मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति का समाज एवं जनजीवन

ज्योति ध्यानी
एम०एस०पी० स्कूल, बहादराबाद

भोटिया समाज में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार प्रणाली होने से इनके उद्योग धन्धे एवं व्यापार जिसमें पशुपालन (भेड़–बकरी पालन), ऊन उद्योग, ऋतुकालीन प्रवास एवं कृषि उद्योग आदि क्रियाकलाप संम्भव रहे हैं। पित्रसत्तात्मक समाज होने से परिवार का श्रेष्ठ बुजुर्ग व्यक्ति ही परिवार का मुखिया बनकर पारिवारिक, सामाजिक गतिविधियों का संचालन कुशलतापूर्वक करता है। स्त्रियों को भोटिया समाज में विशेष सम्मान प्राप्त होता है। स्त्री को "घरवारिनी" कहते हैं जो कि घर पर भोजन बनाना, बच्चों की देखरेख करना, कृषि करना, ऊनी वस्त्रों का निर्माण आदि कार्यो में लीन रहती हैं। घर की आन्तरिक व्यवस्था ताला–चाबी स्त्री के पास ही होती है। भोटान्तिक समाज सम्पूर्ण गाँव में एक दूसरे के सुख–दुख एवं सम–विषम परिस्थितियों में पूरी ईमानदारी एवं निष्ठा भाव से साथ देते हैं।

भोटिया समाज में आथित्य सत्कार "अतिथि देवो भवः" की भावना सर्वोपरि होती है। अतिथि या मेहमान के सत्कार में सर्वप्रथम (जौ अनाज से निर्मित पेय) 'जान' (बियर) कांसी (प्याली) में परोसी जाती है साथ ही उसके परिवार की कुशल क्षेम पूछी जाती है। धार्मिक क्रियाकलापों, उत्सवों के मौके पर भी 'जान' (बियर) को पवित्रता का द्योतक मानकर बड़े–बुजुर्ग–महिलाएं सभी प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। हर्षोल्लास के साथ त्यौहारों का भी आनन्द लेते हैं। बड़े–बुजुर्गो की राय के अनुसार पंचायत स्तर पर ही सभी फैसले लिये जाते हैं।

गुरूभै–गुरूबैणी सामाजिक संस्था

नीती–माणा भोटिया समाज में प्रचलित 'गुरूभै–गुरूबैणी'[3] (गुरू भाई–गुरू बहिन) अति विशिष्ट सामाजिक संस्था है। यहाँ के बुजुर्गो की मान्यता है कि गुरू गोरखनाथ ने अपने शिष्यों को भाई–बहिन के रिश्ते को निभाने का मंत्र दिया था। उसी आस्था एवं विश्वास के साथ आज भी 'गुरूभै–गुरूबैणी' संस्था बनी हुई है। इस संस्था में समान उम्र के सभी भाई–बहिनें होती हैं। यह आयोजन अक्टूबर से दिसम्बर माह के मध्य किया जाता है। इस–दो दिवसीय आयोजन में प्रथम दिवस को सांयकाल गुरू बहनें अपने गुरू भाईयों को एक घर में आमंत्रित करती हैं।

इस आयोजन पर विभिन्न प्रकार के व्यंजन हलुआ, पूरी, दाल, चावल को बनाकर अपने ईष्ट–देवों की पूजा–अर्चना, धूप–दीप प्रज्वलित करके तत्पश्चात भोजन ग्रहण किया जाता है। रात–भर अपने सुख–दुःख की खूब बातें मनोविनोद करते हुए सामूहिक रूप से एक दूसरे की तन,मन,धन से सुख–दुःख में सहायता करने का वादा किया जाता है। पुनः दूसरे दिन भी सायं काल में पूर्ववत् भाइयों के लिए बहिनें अनेक व्यंजन तैयार करती हैं। सगुन के रूप में बकरे की बलि देकर उसकी आंतों से एक विशेष प्रकार का व्यंजन 'गीमा–आड़न्ज्या' बनाया जाता है। जिसे सभी भाई–बहिनें एक साथ मिलकर खाते हैं। आपस में बातें एवं सुखद जीवन की कामना के संदेश के साथ पुनः मिलन की मंगल कामना की जाती है। जिसमें रक्षा–बन्धन के दिन बहनें–भाईयों को 'राखी' पहनाती हैं। भोटिया समाज में 'गुरूभै–गुरूबैणी' सामाजिक संस्था आपसी प्यार, स्नेह, भ्रातृत्व भावना से प्रेरित एक शिक्षाप्रद संस्था है। जिससे कि समाज में एक दूसरे के प्रति स्नेह एवं कर्तव्य पालन की भावना बनी होती है। इन्ही सामाजिक मान्यताओं के आधार पर संस्कारों के अनुसार भोटान्तिक (भोटिया) समाज में रहन–सहन, खान–पान, वेषभूषा व रीति–रिवाजों की प्रक्रिया बनी हुई है।

शीत एवं ग्रीष्मकालीन आवास व्यवस्था

भोटिया जनजाति सदियों से हिमालय के शिखरों के आस–पास रहती आयी है। जहाँ शीतकाल में अत्यधिक बर्फ पड़ने के कारण जीवन यापन असंभव हो जाता है। शीतकाल आरंभ होते ही भोटिया जनजाति के लोग निचली गरम घाटियों जहाँ बर्फ बहुत कम पड़ती है। ऐसे स्थानों पर अपने ग्रीष्म कालीन आवास बनाते हैं। मौसम परिवर्तन होने पर प्रवर्जन काल के दौरान अपने मवासो (कुनवा) सहित कबीले के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं। जिसे मार्छाभाषा में ''मवासा दिपंग'' व तोल्छा भाषा में ''मवासा हिटण'' कहते हैं। इन शीत व ग्रीष्म कालीन आवासों में पहुँचने के लिए 'प्रवर्जन यात्रा' के लिए दिन तय किया जाता है। जिसमें सभी मवासे (परिवार) शुभ मुहूर्त निकालकर नये वस्त्रों को पहनकर अपने उपयोग की सारी वस्तुएँ भोजन सामग्री, वर्तन, बिस्तर, तम्बू, हथोड़ा, जंजीर, भेड़–बकरियों, घोड़े, खच्चरों में सामान लादकर चल पड़ते हैं। इस काफिले में बड़े–बुजुर्ग–बच्चे सभी होते हैं।

शीतकालीन एवं ग्रीष्मकालीन गाँवों की दूरी 100 से 150 मील के फासले में होने से प्रतिदिन 10 से 12 मील की दूरी तय की जाती है। इस लम्बी प्रवर्जन यात्रा के लिए विश्राम हेतु अनेक पड़ाव होते हैं। इन पड़ावों में पहुँचते ही परिवार के सभी सदस्य अपने–अपने कार्यों में लग जाते हैं। पुरूष भोजन बनाने के लिए लकड़ी जुटाते हैं। महिलाएँ भोजन तैयार करने का कार्य करती हैं। बच्चे भेड़ व बकरियों को पानी पिलाना व चुगाना आदि कार्य करते हैं। लड़के भी दिन में भेड़–बकरियों को चुगाने के लिए आसपास चारागाहों में चले जाते हैं। शाम होते ही महिलाएँ भोजन तैयार करके सभी सदस्यों को प्रेम से भोजन कराकर रात्रि में तम्बू में सो जाते हैं। इस दौरान पशुओं, भेड़–बकरियों की देखभाल पुरूषों द्वारा की जाती है। भेड़–बकरियों की सुरक्षा के लिए बड़े–बड़े कुत्ते भी रखे जाते हैं। पुनः दूसरे दिन सुबह उठकर प्रातःकाल अपने सामान व पशुओं सहित अगले पडाव की ओर बढ़ते हैं। यह जनजाति अधिकांशतः अपनी भेड़–बकरीयों के साथ जंगलों में पशुचारण करती रहती है। प्रवास काल के दौरान अपने पशु एवं जन–धन के कुशल जीवन की कामना के लिए प्रकृति के विविध रूपों की पूजा अर्चना व नृत्य गीतों का आयोजन भी करते रहते हैं। इस प्रकार विभिन्न पड़ावों से गुजरकर अपने मूल आवासों में पहुँचते हैं। प्रत्येक वर्ष जून से सितम्बर चार माह तक ग्रीष्मकालीन गाँवों में शेष आठ माह तक शीत कालीन गाँवों में रहते हैं। भोटिया जनजाति के ये ग्रीष्म तथा शीतकालीन आवास नीति, माणा, व्यास, दारमा तथा चौदांस घाटियों में बने हुए हैं। नीति घाटी के भोटिया गाँव नीति, गमशाली, वाम्बा से शीतकाल में भीमतला बौला, छिनका, सेमला आदि। माणा घाटी के माणा, इन्द्रधारा व गजकोटी से शीतकाल में घिघंराण, नैग्वाण, सिरोखोमा, सेंटुणा आदि। दारमाघाटी के सींपू, मारछा, दितांग से शीतकाल में गलांती, गनगड़, छरछम तथा व्यास घाटी के कुटी, नबि, गुन्जी, बुंदी, गरव्यांग के शीतकाल में दारचुला, तिनकर आदि गाँवों में पहुंच जाते हैं। धीरे–धीरे भोटिया जनजाति के मवासों में प्रवास परम्परा (पड़ाव) कम होती जा रही है। 1962 के पश्चात भोटिया अपने स्थायी मूल आवासों में रहना पसन्द करने लगे हैं। उत्तराखण्ड में निवास करने वाली भोटिया जनजाति के प्रमुख ग्रीष्म एवं शीतकालीन आवासों की सारणी इस प्रकार है–

ग्रीष्मकालीन आवास		शीतकालीन अवकाश
	नीति घाटी	
1. नीति	–	कौड़िया, भीमतला
2. गमशाली	–	बोला, चमेली, सेमला, मठ
3. बाम्पा	–	छिनका
4. फरकिया	–	तिफन्ना, मंगरोल, मुन्याली
5. कैलाशपुर	–	बाजपुर, कुहेड़
6. महरगॉव	–	सेमला, सेलवानी

7. मलारी – बालखीता, देवलीबगड़
8. कोसा – डिड़ोली, मंगरोली, सोनला
9. जेलम – नन्दप्रयाग, बागमुण्डा, डिडोली
10. जुम्मा – कर्णप्रयाग, लंगासू, काल्द
11. द्रोणागिरी – मठियाला, घुरसाली
12. मरवच – विरही, गतूण

माणा घाटी

13. माणा – घिंघराण, नेग्वाड़ (गोपेश्वर)
14. इन्द्रधारा – सिरोखोमा
15. गजकोटी – सेंटुणा
16. औत (हनुमान चट्टी) – नरो,सिरोखेमा,

गोरी घाटी

17. मिलम – तेजम, भैसकोट, भनारकोट , धूरा
18. पान्छू – सुनगढ़ी, धूरा
19. विलजू – चांसला, द्योती
20. बूरफू – कोलिया, भवानी ,बनौरी , झलौरी
21. मारतोली – अमथास, देवी बगड़, विमला बगड़
22. तोला – गागरपानी , छौला बगड़ , फरसौली
23. रिलकोट – वंकुरी, सालिड़,
24. लस्पा – पोखरी, लुग्खी

दारमा घाटी

25. सीपू – गलांती
26. तिदांग – कालिका
27. गौ – गरबगड़
28. फिलम – छरछम
29. स्याला, चल, दर – जूनी बगड़
30.नागलिड़ – गलांती
31. दाकर – धरबगड़
32. सोन – निगालपानी

व्यास घाटी

33. कुटी – दारचूला
34. मवि – दारचुला
35. गुंजी – तड़तंती
36. बुंदी – तिनकर
37. गरव्यांग – धारचुला

वस्त्र एवं आभूषण

भोटिया जनजाति ने वेशभूषा को स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप स्वीकार किया है। इनके मुख्य परिधान ऊन से निर्मित गर्म कपड़े होते हैं। स्त्रियाँ अपनी पारम्परिक वेशभूषा में लवा पहनती हैं। जिसे अपनी ही पालतू भेड़ों के ऊन से महिलाएँ स्वयं तैयार करती है। काले रंग का कम्बलनुमा वस्त्र स्त्रियाँ अपने शरीर में लपेटकर कन्धे से बांध देती हैं। घाघरा निचले हिस्से में व आंगड़ी ऊपरी शरीर में पहनी जाती है। कुंवारी लड़कियाँ सिर पर तौलिया लपेटकर रखती हैं। शादीशुदा स्त्रियाँ सिर पर 'घुंटी' रूमाल या स्कार्फनुमा वस्त्र बांधती हैं। जिसके ऊपर रेशम के तागे से चौकोर कढ़ाई की होती है। माथे के ऊपर स्थित भाग को 'छ्याका' कहते हैं। छ्याका के मध्य में लाल जीन से निर्मित कपड़ा सुहाग की निशानी मानी जाती है। नारी की लाज का वस्त्र 'आँगणी' व

'खलाड़णी' का महत्व राजपूत कालीन प्रथा के अनुरूप माना जाता है। उत्तराखण्ड के सीमान्त पर्वतीय अंचल के भोटिया समाज की स्त्रियों में काँचला, आंगणी व लुड़ाणी पहनने की प्रथा पूर्वकाल से ही है। खलाड़णी या आंगणी को बांधने के लिए पीछे तांणे (कपड़े के बने फीते) लगे रहते हैं। जिससे शरीर का अग्रभाग पूर्ण रूप से ढका होता है। लवा या काला कम्बल ऊन से निर्मित वस्त्र को शीत पर्वतीय प्रदेश की महिलाएँ धारण करती हैं। लवा या काला कम्बल महिलाएँ धोती के स्थान पर पहनती हैं। कहा जाता है कि ''गढ़वाल में कत्यूरी शासन काल के दौरान काला लवा महिलाएँ पहना करती थी, स्वयं कत्यूरी राजा की रानी 'जिया' भी काला कम्बल 'लवा' पहनती थी।''[4]

पुरूषों में भी पारम्परिक वेशभूषा में ऊन से निर्मित चोली (धारड़) व चूड़ीदार रबदार जंगुली (पैजामा) व सिर पर टांकी जो मारकीन कपड़े से निर्मित होती थी, धारड़ के बाहर कमर कसने का 8 से 10 हाथ का सूती कपड़ा होता था। धारड़ के अन्दर मिरजाई बनी होती थी जो सफेद मोटे खद्दर के कपड़े से निर्मित होती थी। आभूषणों में पुरूष हाथ में कंगन (कड़ा), गले में हंसुला, कान की मुर्की (कुण्डल) पहना करते थे। आज भी कई बुजुर्गों के पास यह धरोधर के रूप में मौजूद है। इसमें हंसुला चांदी का व मुर्की सोने की बनी होती थी। पुरूष नोकदार राजस्थानी चमड़ें की जूतियां व स्त्रियां आगे से गोल चमड़े की जूतियां जिसमें रेशमी तागे से कढ़ाई की हुई पहनती थी। लेकिन आज भोटिया समाज गैरजनजातीय समाज के प्रभाव में आने से पुरूष कुर्ता, पैजामा, कोट–पैन्ट व स्त्रियां कुर्ता सलवार व धोती ब्लॉऊज पहनने लगी हैं। जिससे इनका परम्परागत पहनावा आधुनिकता की दौड़ में घटता चला आ रहा है। परम्परागत पहनावा केवल बुजुर्ग व्यक्तियों तक ही सीमित रह गया है। भोटिया समाज की महिलाएं आज भी विशेष पर्वो, त्यौहारों पर आभूषणों से सुसज्जित रहती हैं। स्त्रियों के गले में मोतियों की माला, चांदी की चवन्नियों की माला, हाथों में चूड़ियां, गले में गुलुबन्द, नाक में नथ, बुलाक (बेसर) मुर्की, कानों में कुण्डल आदि सोने, चांदी के आभूषण होते हैं। चांदी की छागुले, पौछी तथा पैरों की पैजनी, झिंगोरी, अमृती आदि गहने स्त्रियां धारण करती हैं। सूणी सांगल चांदी की निर्मित होती हैं। यह तीन इंच चौड़ी, डेढ़ इंच लम्बी, आठ से दस इंच की जंजीरनुमा पंक्तियों की बनी तगमानुमा आकृति सीने के पास लटकायी रहती है। सूणी सांगल के ऊपरी सिरे में हमेशा काम आने वाली सुई, चिमटी, सुअर दांत, सुअर के बाल का ब्रुश जो आभूषण साफ करने के लिए होता है। कान की सफाई के लिए कानकोरी व चाकू भी लटका रहता है। चांदी के पुराने सिक्कों से निर्मित माला 'चन्दाहार', हाथ में पौजी, सिर पर शीशफूल धारण किया रहता है।

कृषि एवं खानपान

भोटिया जनजाति हिमालय के निकट सीमान्त क्षेत्र लगभग समुद्रतल से 7000 फीट से लेकर 12000 फीट की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में रहती है। वर्षभर इन क्षेत्रों में बर्फ पड़ने से यहां पर कृषि योग्य भूमि बहुत कम है। निचली भोटान्तिक घाटियों में उवा, जौ, फाफर, चीणा, कौणी, ओंगल, सरसों, मटर आदि फसल मई से सितम्बर मात्र चार माह में पककर तैयार हो जाती है। सब्जियों में आलू, मटर, गोभी, शलजम, राई आदि की पैदावार भी होती है। भोटिया समुदाय के लोग कोदा, झंगोरा, उवा, जौ, फाफर से निर्मित भोजन करते हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए उत्तम पौष्टिक एवं शक्तिवर्धक होता है। जौ, फाफर, उवा के आटे से निर्मित रोटी, झंगोरा एवं जंगली वनस्पति यकन, प्यकन, सिन्दू आदि को सब्जी के रूप में उपयोग करते हैं। इनके मुख्य व्यंजन गद्रे व फाफर, उवा के आटे से निर्मित तीपाय्येन तथा सत्तू के आटे से निर्मित रोटी आदि है। इन क्षेत्रों में अत्यधिक ठंड पड़ने के कारण मांस को भी प्रमुख भोजन के रूप में परोसा जाता है। बकरे का मांस, आंतों से निर्मित पकवान 'गीमाअड़ंज्या' को विशेष पर्व एवं त्यौहार के अवसर पर बड़े शौक से खाया जाता है। बकरे के मांस का विशेष उपयोग शीतकाल में किया जाता है। घरों के अन्दर मांस को रस्सी से टांगकर सुखाया जाता है। इस सूखे मांस को ऋतुकालीन प्रवास (मैत व गुनसा) के दौरान भोजन के रूप में खाया जाता है। नीती–माणा घाटी के तोल्छा व मारछा एक विशेष प्रकार की (चाय)

"ज्या" जो कि घी व नमक को गरम पानी के साथ मिलाकर तैयार की जाती है। इसे एक विशेष प्रकार की लकड़ी के गोल बर्तन में मथा जाता है। प्रातः व सांय काल में यह ज्या (चाय) भोटिया लोग बड़े शौक से पीते हैं।

शीत प्रदेश में निवास करने के कारण भोटिया लोग एक विशेष प्रकार की मदिरा (छंग या जान) जिसे झंगोरा, चावल, गुड़ व स्थानीय अनाज को मिलाकर निर्मित की जाती है। जौ के आटे को एक बर्तन में बंद करके सड़ाकर पांच या छः दिन बाद निकाला जाता है, जिसे बाल्मा कहते हैं। बाल्मा में पुनः गुड़ डालकर व अनाज को भी मिलाकर हल्का गरम करके एक सप्ताह तक बंद डिब्बे में रखा जाता है, जिससे वह सड़कर 'खमीर' तैयार कर देता है। इसे विशेष विधि से भाप के द्वारा निकाला जाता है। इससे निर्मित 'छपाग्यो' (मदिरा) बड़ी तेज नशीली होती है। जिसको पानी के साथ मिलाकर विशेष पर्वों, त्यौहारों एवं विवाह के अवसर पर सेवन किया जाता है। सामान्यतः भी भोटिया परिवार के सभी सदस्य ठंड के दिनों में इसका सेवन करते रहते हैं, जिससे शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। यह जान, छंग (मदिरा) प्रत्येक घर में बनायी जाती है। ब्रिटिश शासन व राजशाही के दौरान भोटिया समाज को मदिरा निर्माण की पूर्ण स्वतंत्रता थी।[4] लेकिन वर्तमान में भोटिया समाज ने इस मदिरा निर्माण को व्यावसायिक तौर से आरंभ कर दिया है।

उस भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकारा जाना चाहिए जो देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है, अर्थात हिंदी।

रविन्द्र नाथ ठाकुर